श्रीमद् भगवदगीता – सोलहवाँ अध्याय

अनुक्रम

सोलहवें अध्याय का माहात्म्य 1
सोलहवाँ अध्यायः दैवासुरसंपद्विभागयोग 2

सोलहवें अध्याय का माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं- पार्वती ! अब मैं गीता के सोलहवें अध्याय का माहात्म्य बताऊँगा, सुनो। गुजरात में सौराष्ट्र नामक एक नगर है। वहाँ खड्गबाहु नाम के राजा राज्य करते थे, जो दूसरे इन्द्र के समान प्रतापी थे। उनका एक हाथी था, जो मद बहाया करता था और सदा मद से उन्मत्त रहता था। उस हाथी का नाम अरिमर्दन था।

एक दिन रात में वह हठात साँकलों और लोहे के खम्भों को तोड़-फोड़कर बाहर निकला। हाथीवान उसके दोनों ओर अंकुश लेकर डरा रहे थे, किन्तु क्रोधवश उन सबकी अवहेलना करके उसने अपने रहने के स्थान- हथिसार को गिरा दिया। उस पर चारों ओर से भालों की मार पड़ रही थी फिर भी हाथीवान ही डरे हुए थे, हाथी को तनिक भी भय नहीं होता था। इस कौतूहलपूर्ण घटना को सुनकर राजा स्वयं हाथी को मनाने की कला में निपुण राजकुमारों के साथ वहाँ आये। आकर उन्होंने उस बलवान दँतैले हाथी को देखा। नगर के निवासी अन्य काम धंधों की चिन्ता छोड़ अपने बालकों को भय से बचाते हुए बहुत दूर खड़े होकर उस महाभयंकर गजराज को देखते रहे। इसी समय कोई ब्राह्मण तालाब से नहाकर उसी मार्ग से लौटे। वे गीता के सोलहवें अध्याय के '**अभयम्**' आदि कुछ श्लोकों का जप कर रहे थे। पुरवासियों और पीलवानों (महावतों) ने बहुत मना किया, किन्तु किसी की न मानी। उन्हें हाथी से भय नहीं था, इसलिए वे चिन्तित नहीं हुए। उधर हाथी अपनी चिंघाड़ से चारों दिशाओं को व्याप्त करता हुआ लोगों को कुचल रहा था। वे ब्राह्मण उसके बहते हुए मद को हाथ से छूकर कुशलपूर्वक (निर्भयता से) निकल गये। इससे वहाँ राजा तथा देखने वाले पुरवासियों के मन मे इतना विस्मय हुआ कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। राजा के कमलनेत्र चकित हो उठे थे। उन्होंने ब्राह्मण को बुला सवारी से उतरकर उन्हें प्रणाम किया और पूछाः 'ब्राह्मण ! आज आपने यह महान अलौकिक कार्य किया है, क्योंकि इस काल के समान भयंकर गजराज के सामने से आप सकुशल लौट आये हैं। प्रभो ! आप किस देवता का पूजन तथा किस मन्त्र का जप करते हैं? बताइये, आपने कौन-सी सिद्धि प्राप्त की है?

ब्राह्मण ने कहाः राजन ! मैं प्रतिदिन गीता के सोलहवें अध्याय के कुछ श्लोकों का जप किया करता हूँ, इसी से सारी सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं।

श्रीमहादेवजी कहते हैं- तब हाथी का कौतूहल देखने की इच्छा छोड़कर राजा ब्राह्मण देवता को साथ ले अपने महल में आये। वहाँ शुभ मुहूर्त देखकर एक लाख स्वर्णमुद्राओं की दक्षिणा दे उन्होंने ब्राह्मण को संतुष्ट किया और उनसे गीता-मंत्र की दीक्षा ली। गीता के सोलहवें अध्याय के '**अभयम्**' आदि कुछ श्लोकों का अभ्यास कर लेने के बाद उनके मन में हाथी को छोड़कर उसके कौतुक देखने की इच्छा जागृत हुई, फिर तो एक दिन सैनिकों के साथ बाहर निकलकर राजा ने हाथीवानों से उसी मत्त गजराज का बन्धन खुलवाया। वे निर्भय हो गये। राज्य का सुख-विलास के प्रति आदर का भाव नहीं रहा। वे अपना जीवन तृणवत् समझकर हाथी के सामने चले गये। साहसी मनुष्यों में अग्रगण्य राजा खड्गबाहु मन्त्र पर विश्वास करके हाथी के समीप गये और मद की अनवरत धारा बहाते हुए उसके गण्डस्थल को हाथ से छूकर सकुशल लौट आये। काल के मुख से धार्मिक और खल के मुख से साधु पुरुष की भाँति राजा उस गजराज के मुख से बचकर निकल आये। नगर में आने पर उन्होंने अपने राजकुमार को राज्य पर अभिषिक्त कर दिया तथा स्वयं गीता के सोलहवें अध्याय का पाठ करके परम गति प्राप्त की

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सोलहवाँ अध्यायः दैवासुरसंपद्विभागयोग

7 वें अध्याय के 15वें श्लोक में तथा 9वें अध्याय के 11वें तथा 12 वें श्लोक में भगवान ने कहा हैः 'आसुरी तथा राक्षसी प्रकृति धारण करने वाले मूढ लोग मेरा भजन नहीं करते हैं लेकिन मेरा तिरस्कार करते हैं।' और नौवें अध्याय के 13वें और 14वें श्लोक में कहाः 'दैवी प्रकृतिवाले महात्मा पुरुष मुझे सर्वभूतों का आदि और अविनाशी समझकर अनन्य प्रेमसहित सब प्रकार से हमेशा मेरा भजन करते हैं', लेकिन दूसरे प्रसंग चालू होने के कारण वहाँ दैवी और आसुरी प्रकृति के लक्षण वर्णन नहीं किये हैं। फिर पंद्रहवें अध्याय के 19 वें श्लोक में भगवान ने कहाः 'जो ज्ञानी महात्मा मुझ पुरुषोत्तम को जानते हैं वह सर्व प्रकार से मेरा भजन करते हैं।' इस विषय पर स्वाभाविक रीति से ही दैवी प्रकृतिवाले ज्ञानी पुरुष के तथा आसुरी प्रकृतिवाले अज्ञानी मनुष्य के लक्षण कौन-कौन से हैं यह जानने के इच्छा होती है। इसलिए भगवान अब दोनों के लक्षण और स्वभाव का विस्तारपूर्वक वर्णन करने के लिए यह सोलहवाँ अध्याय आरम्भ करते हैं। इसमें पहले

तीन श्लोकों द्वारा दैवी संपत्तिवाले सात्त्विक पुरुष के स्वाभाविक लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं।

।। अथ षोडशोऽध्यायः ।।

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।1।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।2।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।3।।

श्री भगवान बोलेः भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञान के लिए ध्यानयोग में निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, इन्द्रियों का दमन, भगवान, देवता और गुरुजनों की पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मों का आचरण और वेद-शास्त्रों का पठन-पाठन तथा भगवान के नाम और गुणों का कीर्तन, स्वधर्मपालन के लिए कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियों के सहित अन्तःकरण की सरलता। मन, वाणी और शरीर में किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध का न होना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग, अन्तःकरण की उपरति अर्थात् चित्त की चंचलता का अभाव, किसी की निन्दा न करना, सब भूत प्राणियों में हेतुरहित दया, इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी उनमें आसक्ति का न होना, कोमलता, लोक और शास्त्र से विरूद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव। तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर की शुद्धि तथा किसी में भी शत्रुभाव का न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव – ये सब तो हे अर्जुन ! दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं(1,2,3)

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।।4।।

हे पार्थ ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञान भी- ये सब आसुरी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं।(4)

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायसुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।।5।।

दैवी-सम्पदा मुक्ति के लिए और आसुरी सम्पदा बाँधने के लिए मानी गयी है। इसलिए हे अर्जुन ! तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुआ है।(5)

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रृणु।।6।।

हे अर्जुन ! इस लोक में भूतों की सृष्टि यानी मनुष्यसमुदाय दो ही प्रकार का हैः एक तो दैवी प्रकृति वाला और दूसरा आसुरी प्रकृति वाला। उनमें से दैवी प्रकृतिवाला तो विस्तारपूर्वक कहा गया, अब तू आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य-समुदाय को भी विस्तारपूर्वक मुझसे सुन(6)

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।।7।।

आसुर स्वभाव वाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति- इन दोनों को ही नहीं जानते। इसलिए उनमें न तो बाहर-भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्यभाषण ही है।(7)

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।।8।।

वे आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्य कहा करते हैं कि जगत आश्रयरहित, सर्वथा असत्य और बिना ईश्वर के, अपने-आप केवल स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न है, अतएव केवल काम ही इसका कारण है। इसके सिवा और क्या है?(8)

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः।।9।।

इस मिथ्या ज्ञान को अवलम्बन करके जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है तथा जिनकी बुद्धि मन्द है, वे सबका अपकार करने वाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत के नाश के लिए ही समर्थ होते हैं।(9)

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।10।।

वे दम्भ, मान और मद से युक्त मनुष्य किसी प्रकार भी पूर्ण न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर, अज्ञान से मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके और भ्रष्ट आचरणों को धारण करके संसार में विचरते हैं।(10)

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः।।11।।
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।

ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्।।12।।

तथा वे मृत्यु पर्यन्त रहने वाली असंख्य चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, विषयभोगों के भोगने में तत्पर रहने वाले और 'इतना ही सुख है' इस प्रकार मानने वाले होते हैं। वे आशा की सैंकड़ों फाँसियों में बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोध के परायण होकर विषय भोगों के लिए अन्यायपूर्वक धनादि पदार्थों का संग्रह करने की चेष्टा करते हैं।(11,12)

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।।13।।
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानापि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलनान्सुखी।।14।।
आढयोऽभिजनवानस्मि कोऽन्योस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।।15।।
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।।16।।

वे सोचा करते हैं कि मैंने आज यह प्राप्त कर लिया है और अब इस मनोरथ को प्राप्त कर लूँगा। मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह हो जायेगा। वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और उन दूसरे शत्रुओं को भी मैं मार डालूँगा। मैं ईश्वर हूँ, ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ। मैं सब सिद्धियों से युक्त हूँ और बलवान तथा सुखी हूँ। मैं बड़ा धनी और बड़े कुटुम्बवाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा और आमोद-प्रमोद करूँगा। इस प्रकार अज्ञान से मोहित रहने वाले तथा अनेक प्रकार से भ्रमित चित्तवाले मोहरूप जाल से समावृत और विषयभोगों में अत्यन्त आसक्त आसुर लोग महान अपवित्र नरक में गिरते हैं।(13,14,15,16)

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमान मदान्विताः
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्।।17।।

वे अपने-आपको ही श्रेष्ठ मानने वाले घमण्डी पुरुष धन और मान के मद से युक्त होकर केवल नाममात्र के यज्ञों द्वारा पाखण्ड से शास्त्रविधिरहित यजन करते हैं।(17)

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।18।।

वे अहंकार, बल, घमण्ड, कामना और क्रोधादि के परायण और दूसरों की निन्दा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अन्तर्यामि से द्वेष करने वाले होते हैं।(18)

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।।19।।

उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बार-बार आसुरी योनियों में डालता हूँ।(19)

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।।20।।

हे अर्जुन ! वे मूढ़ मुझको न प्राप्त होकर ही जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं, फिर उससे भी अति नीच गति को प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकों में पड़ते हैं।(20)

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।21।।

काम, क्रोध तथा लोभ- ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् उसको अधोगति में ले जाने वाले हैं। अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिए।(21)

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्।।22।।

हे अर्जुन ! इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है, इससे वह परम गति को जाता है अर्थात् मुझको प्राप्त हो जाता है।(22)

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।23।।

जो पुरुष शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न परम गति को और न सुख को ही।(23)

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।24।।

इससे तेरे लिए इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू शास्त्रविधि से नियत कर्म ही करने योग्य है।(24)

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडषोऽध्यायः ।।16।।
इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के
श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में दैवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ।
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ